द्वितीय अध्याय

संस्कृत के विनय गीतों की परम्परा

संस्कृत के विनय गीतों की परम्परा --

शास्त्रीय परम्परा में काव्य के मुख्यत: दो रूप प्रचलित हैं। एक श्रव्य और दुसरा दृश्य। आमतौर पर श्रव्य-काव्य को ही 'काव्य' कहा जाता है, जब कि दृश्य काव्य 'नाटक' शब्द से जुडा हुआ है। श्रव्य काव्य फिर दो रूपों में विभाजित किया जाता है। एक प्रबन्ध-काव्य और दूसरा मुक्तक-काव्य। संस्कृत-साहित्य में प्राय: सभी भक्ति-गीत या विनय-गीत मुक्तक के अंतर्गत आते हैं। 'मुक्तक वह काव्य है,जो अपना सौन्दर्य और अर्थ अभिव्यक्त करने में स्वयं समर्थ है।'[१] उसे और किसी प्रकार की संदर्भ आदि की आवश्यकता अनिवार्य नहीं होती।

संत और भक्त कवियों की आत्मा भक्ति से भरी हुई होती है,जो शब्दों का रूप धारण करके कविता के रूप में प्रकट होती है। काव्यशास्त्र में काव्य के यश,धन आदि प्रयोजन बताये गये हैं। वैसे ही भक्ति-काव्य का प्रयोजन भक्त के हृदय के सहजोद्गारों की अभिव्यक्ति है। भक्ति-काव्य के अनेक रूप हैं, फिर भी उनमें भक्ति का सातत्य बनाये रहता है। ईश्वर के सम्बन्ध में असाधारण प्रेम ही भक्ति है। ईश्वर के पास जाने के अनेक मार्ग हैं -- जैसे ज्ञान-मार्ग,कर्म,योग, उपासना इत्यादि। किन्तु भक्ति के अतिरिक्त अन्यमार्ग का अनुसरण करना जनसाधारण के लिए कठिन है, क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि के तौर पर जिस अध्ययन, अनुष्ठान आदि की अनिवार्यता है, वह जनसाधारण के लिए बहुत ही कठिन है।

साधक प्रमाण ग्रन्थों का न अध्ययन कर सकता है, न अधिकारी गुरू को पा सकते हैं। सभी की इतनी ताकद नहीं होती कि ठीक तरह कर्म का अनुसरण किया जा सके अथवा योग मार्ग द्वारा हृदय में स्थित भगवान को पहचान कर सके। सब में इसके लिए आवश्यक शारीरिक,मानसिक,बौध्दिक न क्षामता होती है, न आर्थिक शक्ति-इस कारण केवल भक्तिमार्ग या उपासना ऐसा उपाय है, जो सब के लिए सुलभ है। कोई भी काम तब तक अच्छा नहीं किया जा सकता,जब तक उसके करने

में कर्ता को आनंद नहीं आता । इस कारण आद्य शंकराचार्य जैसे केवल द्वैत्व माने गये भक्त का अधिक सरस रूप उनके स्त्रोत्रों में हम देखते है, जैसे षट्पदी में ।

वैदिक दर्शन के मुख्य आधार तीन है --

१. उपनिषद
२ ब्रह्मस्त्रोत्र
३ गीता

मानवी विचार धारा की चरमसीमा हम उपनिषदों में पाते है । उन उपनिषदों के विभिन्न विचारों में अविरोध दिखाकर एक सुसूत्र चिंतन को ब्रह्मस्तोत्र प्रस्तुत करते है । गीता में भी यही भाव है । समन्वय और समझौते में अंतर होता है । दो परस्पर विरोधी पक्षों का कुछ पिछे हट जाने के लिए कहना समझौता है, जिसमें दोनों पक्षों को अंशत: क्यों नहीं सदोष माना जाता है । परिणाम यह होता है, कि दोनों पक्ष किसी अधिकारी वर्ग के कहने पर हट जाते है आवश्य, किन्तु पुन: कभी विरोध में खड़े हो जाते है । इसके विपरित समन्वय है, जिसमें - अधिकारी पुरूष - जिन्हे दोनों पक्ष मानते है बाहरी पारस्परिक विरोध का परिहार करके आंतरिक एकता एवं समिपता के दर्शन कराते है । यही कार्य गीता ने किया है, तथा ब्रह्मसूत्रों ने भी ।

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य साधक और भगवान की एकरूपता दिखाना या पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त करना है । इसके अतिरिक्त तीन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास दर्शन करता है --

१ मैं कौन हूँ ?
२ चारों तरफ दिखाई देनेवाले जगत का स्वरूप क्या है ?
३ समग्र चराचर सृष्टि का कारोबार चलानेवाली जो शक्ति है,उसका स्वरूप क्या है ? मेरा उससे क्या सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शास्त्रों का आविर्भाव हुआ है । शास्त्रों के तीन रूप उपलब्ध है --

१ शास्त्रीय ग्रन्थ, जिनमें विवेचन होता है, कवित नहीं

२ काव्य, जिनमें कल्पना प्रसूत रमणीय अर्थवाले काव्य के दर्शन होते है ।

३ उभय-काव्य, जिनमें काव्य के साथ साथ दार्शनिक सिध्दान्तों की प्रतीति होती है ।

संत और भक्तों का काव्य मुख्यत: इसी तीसरे प्रकार का काव्य है । वह जीव, जगत् और ईश्वर तीनों का साधार और सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत करता है । किन्तु यदि काव्य के गुण उसमें आ जावें तो वह अधिक प्रभावी होता है । साथ ही ऐसे काव्य की रचना विशिष्ट गुणों से युक्त हो, उसमें लाक्षणिकता, संगीतमयता शब्द और अर्थ की चमत्कृती आदि हो तो वह अति लोकप्रिय होता है ।

भक्ति --

`शाण्डिल्य-भक्ति - सूत्र` में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है -- `सा परानुरक्तिरीश्वरे` ईश्वर में अनुरक्ति ही भक्ति है । `नारद भक्ति सूत्र` में भी भक्ति के लक्षण इस प्रकार बताये गये है -- होने में दु:ख होने की अपेक्षा अपने आप भगवान से एकरूप होने की कामना करती है । कुछ विद्वानों ने इसी विचार को अलग ढंग से व्यक्त किया है । साधक शुरू में कहता है -- दासो हम् (मैं तुम्हारा दास हूँ) जैसे - जैसे साधक की उन्नति होगी वैसे-वैसे `दा` का भाव घट जाता है । इसके बाद `अहम्` भी घट जाता है । और अंत में केवल `सा` रह जाता है । साधक अपना अवशिष्ट रह जाता है । संस्कृत के भक्ति साहित्य में इस प्रकार दर्शन और काव्य का समन्वय मिलता है ।

विनय --

संस्कृत भक्ति-साहित्य में पर्याप्त मात्रा में विनय की भावना अभिव्यक्त हुई है । विनय शब्द के विभिन्न अर्थ काव्य में इस प्रकार व्यक्त हुए है -- विनय

साधक का हृदय और परमात्मा को एकरूप करने का सहज साधन है। शरीर और मन को संयमित करना, मन को भगवान में लगाना साथ ही अपने जीवन के कर्तव्यों को पूरा करना, मर्यादापूर्ण जीवन बिताना, अपने से पहले अन्य दुखियों का विचार करना, लौकिक या पारलौकिक प्रलोभनों से दूर रहना, भगवान के प्रति अटल विश्वास रखना, तथा निष्काम भाव से अपना समग्र जीवन भगवान के प्रति समर्पित करना आदि सारे भाव इस शब्द के अंतर्गत आते हैं। सभी साधक समान बौध्दिक या आत्मिक स्तर के नहीं होते। हर एक की अपनी मर्यादा होती है। जिसके अनुरूप वह भगवान तक जाने का अपना रास्ता चुन लेता है। इस कारण भक्ति की नव - विधाएँ -- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, वंदन, अर्जन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन प्रस्तुत ईश्वर के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है वह अमृत स्वरूपा है। उसे पाकर मनुष्य सिध्द और तृप्त हो जाता है। उसे पाकर मनुष्य किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करता। न वह शोक करता है और न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है।

भक्ति भज धातू से बना है, जिसका अर्थ है सेवा करना, सेवन करना। भक्ति करनेवाला साधक अपने उपास्य की सेवा करना चाहता है। साथ ही उसके असाधारण गुणों का वह सेवन, आचरण करना चाहता है। इसी अर्थ में उपासना शब्द भी रूढ है। इस विषय में आद्य शंकराचार्य का कहना है -- साधक अपने उपास्य का चिंतन करता है, जब जीवनांतर्गत तरह - तरह की कठिनाइयाँ और दु:ख उसे व्याकुल एवं कमोजर करते हैं, तब आधि-व्याधियों से वह अत्यन्त व्याकुल होता है। तब भगवान - उपास्य देवता का ध्यान या तो लुप्त होता है या टूट जाता है। ऐसी स्थिति में अपने उपास्य देवता में ध्यान को टूटने नहीं देना चाहिए।[२] इस प्रकार की साधक की मानसिक अवस्था का होना भले ही दु:खों साधक सभी प्रकार के दु:खों से उद्विग्न हुआ हो भगवान के ध्यान का तेल की धारा की तरह क्षीण होकर भी न टूट जाना उपासना है। तुलसीदास के समकालीन विद्वान पंडित मधुसूदन सरस्वती जी ने इस प्रकार अपने भाव व्यक्त किये हैं -- साधक का मन लाक्षा की तरह होता है, जो भगवान के अनेक गुणों को आँच

में द्रवरूप होकर उसी भगवान की ओर प्रवाही बनता हुआ बहता रहता है। मन की इस अवस्था का नाम भक्ति है। जैसे लाक्षा आग में जलकर अपना अलग अस्तित्व खो देती है और ऐसा की गयी है। इन विधाओं के द्वारा सभी प्रकार के साधकों की सुविधा का विचार किया गया है। यह भी जरूरी नहीं कि कोई साधक इन सभी विधाओंका स्वीकार करे। साधक इनमें से एक या अनेक विधाओं को स्वीकार कर सकता है। भक्ति के क्षेत्र में भगवान की शरण में जाने की भावना या प्रपत्ति का विशेष महत्व है यह प्रपति छः प्रकार को होती है --

१ साधक भगवान के लिए अनुकूल कार्य का संकल्प करे।
२ उसके विरोध में प्रतिकूल कार्य न करे।
३ यह दृढ श्रध्दा धारण करे कि भगवान मेरा उध्दार करेंगे ही।
४ अपने रक्षक के रूप में भगवान का स्वीकार।
५ समर्पित भावना।
६ दीनता याने अपने दोषों का स्वीकार।

संस्कृत का स्तोत्र - साहित्य बहुत पुराना और अतिविशाल है। रामायण, महाभारत के कतिपय अंश स्तोत्रों के उत्तम नमूने माने जा सकते है। भागवत पुराण में भी अनेक स्थलोंपर स्तोत्र मिलते हैं, जिनमें विनय के उत्कृष्ठ रूप अभिव्यक्त हुए हैं। साधक स्तोत्रों के द्वारा उपास्यदेवता के महिमा का गुणगान करता है और अपनी कमजोरी तथा दीनता निःसंकोच कहता है। गीता के दूसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है --

स्तोत्र साहित्य के सैकडों ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें विनय की भावना भरी है। इनमें आद्य शंकराचार्य जी का स्थान अग्रणी है। उन्होंने अपने भाष्य ग्रन्थ में पंडिताई ज्ञान की गहराई तर्कशुध्दता पर प्रस्तुत की गयी है। स्तोत्रों के ग्रन्थों में आप की विनय की भावना कम रसिक नहीं है। श्रीकृष्णाष्ठकम् में विनय का अनूठा रूप मिलता है, तो भवानी स्तोत्र या देव्यापराध, क्षमापन स्तोत्र में

बालक की सरलता और निरीहता के दर्शन होते हैं। गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों के स्तोत्र पढते समय पाठक, भक्त, कवि का स्वच्छ एवं गहरा हृदय स्वयं दीखता है। अन्य कहीं स्तोत्र शब्द चमत्कृति और अर्थ गांभीर्य के उत्कृष्ट नमूने हैं।

कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि आदि महाकवियों की वाणी में भी विनय गीतों के उत्तम नमूने हम देखते हैं। पुष्पदंत कवि का रचा 'शिव-महिमास्तोत्र' विनय गीतों का एक सरल उदाहरण है। पंडितराज जगन्नाथ का 'गंगालहरी' काव्य इसी परम्परा में आता है। एक बालक जिस प्रकार माँ से कुछ माँगता है, उसका चित्रण इस स्तोत्र में है। पं.जगन्नाथ के अन्य गीतों में भी अनेक स्थलों पर विनय का चित्रण मिलता है। संस्कृत साहित्य की विनय गीतों की परम्परा आज तक बराबर बनी रही है।

निष्कर्ष ---

संस्कृत की विनय गीतों की परम्परा देखने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं -- संत और भक्त कवियों की आत्मा भक्ति से भरी हुई है, जो शब्दों का रूप धारण करके कविता के रूप में प्रकट होती है। भक्ति-काव्य के अनेक रूप हैं, लेकिन फिर भी उनमें भक्ति का सातत्य बना रहता है। ईश्वर से असाधारण प्रेम ही भक्ति है। भक्ति में साधक अपने उपास्य की सेवा करता है और उसके असाधारण गुणों का सेवन, आचरण करता है। भक्त अपने इष्टदेव के मिलन के लिए उपासना करता है। 'भगवान' के ध्यान का तेल की धारा की तरह क्षीण होकर भी न टूट जाना उपासना है। भक्ति में साधक का मन लाक्षा की तरह होता है, जो भगवान के अनेक गुणों की आँच में द्रवरूप होकर उसी भगवान को और प्रवाही बनता हुआ बहता रहता है। मन की इस अवस्था का नाम ही भक्ति है।

संस्कृत भक्ति साहित्य में विनय के अनेक अर्थ दिखाई देते हैं -- 'विनय' साधक का हृदय और परमात्मा को एकरूप करने का सहज साधन है। शरीर और

मन को संयमित करना, मन को भगवान में लगाना साथ ही अपने जीवन के कर्तव्यों को पूरा करना मर्यादापूर्ण जीवन बिताना, अपने से पहले अन्य दुखियों का विचार करना, लौकिक या पारलौकिक प्रलोभनों से दूर रहना, भगवान के प्रति अटल विश्वास रखना तथा निष्काम भाव से अपना समग्र जीवन भगवान के प्रति समर्पित करना आदि सारे भाव विनय के ही हैं।

संदर्भ सूची

१ मुक्तक : श्लोक एवैक : चमत्कार क्षम : सताम् ।
– काव्यादर्श (दंडीकृत)

२ गीता १२ । ३ पर शंकराचार्य का भाष्य